ओ३म्

वैदिक संस्कृति का उद्घोषक

वैदिक सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली का साप्ताहिक मुख-पत्र

शुल्क :- एक प्रति 5 रुपया (भारत में) वार्षिक 250 रुपये तथा आजीवन 2500 रुपये

वर्ष 19 अंक 18 कुल पृष्ठ-8 1 से 7 अगस्त, 2024 दयानन्दाब्द 200 सृष्टि सम्वत् 1960853125 सम्वत् 2081 श्रा. कृ.-12

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के विरुद्ध असत्य एवं भ्रामक टिप्पणी करने वाले स्वामी रामभद्राचार्य जी की सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली एवं सम्पूर्ण आर्य जगत की ओर से घोर भर्त्सना की जाती है

स्वामी रामभद्राचार्य द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सम्बन्ध में अनर्गल प्रलाप तथ्यहीन एवं घोर पाप है - स्वामी आर्यवेश

गत् 20 जुलाई, 2024 को अपने कथा प्रवचन के दौरान स्वामी रामभद्राचार्य जी ने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सम्बन्ध में अनर्गल एवं भ्रामक टिप्पणी करते हुए एक ऐसी बात कही जिसका कोई सिर-पैर नहीं है। स्वयं को जगत्गुरु कहलाने वाले श्री रामभद्राचार्य ने टिप्पणी करते समय जरा भी अपनी मर्यादा एवं उम्र का ख्याल नहीं रखा। उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन से कोई सीख नहीं ली, बल्कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सम्बन्ध में गलत एवं भ्रामक टिप्पणी करके अपनी संकीर्ण मानसिकता का परिचय दिया है। आप जैसे साधु-महात्माओं ऐसा व्यवहार शोभा नहीं देता। आश्चर्य की बात है कि वर्तमान समय में आप जैसे व्यक्ति को लोग जगत गुरु मान रहे हैं।

स्वामी जी से हम जानना चाहते हैं कि आपने जो बात कही है, यदि आपके पास इसे सिद्ध करने के लिए कोई तथ्य एवं प्रमाण है तो उसे प्रस्तुत करें, अन्यथा सार्वजनिक क्षमा याचना करके अपनी नैतिकता का परिचय दें। आप एक बुजुर्ग संन्यासी हैं किन्तु जिस प्रकार से आपने महर्षि दयानन्द सरस्वीत जी के सम्बन्ध में टिप्पणी

युग प्रर्वतक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी

स्वामी रामभद्राचार्य जी अनर्गल प्रलाप पर माफी मांगो

करके भ्रांति फैलाई है वह आपको शोभा नहीं देता। हिन्दू समाज को ऐसी मानसिकता वाले समस्त लोगों से सावधान रहने की आवश्यकता है जो महर्षि दयानन्द जी जैसे महापुरुष के सम्बन्ध में इस तरह का विचार रखते हैं। स्वामी जी महाराज यदि आपको महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सम्बन्ध में ज्ञान नहीं है तो उनके द्वारा लिखित कालजयी ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' का एक बार अध्ययन कर लेते जिससे आपको पता लग जाता कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने इस ग्रन्थ में रामायण एवं महाभारत तथा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम एवं योगेश्वर श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में क्या कहा है। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि आपने उनके इस कालजयी ग्रन्थ को नहीं पढ़ा है।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने मयार्दा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र और योगीराज श्रीकृष्णचन्द्र को आप्त पुरुषों के समान बताया है। महर्षि द्वारा दिखाये गये रास्ते पर चलते हुए पूरा आर्य जगत् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र एवं योगीराज श्रीकृष्णचन्द्र को वैदिक संस्कृति का प्रकाश स्तम्भ मानता है और आर्य समाज के कार्यक्रमों में उनके जयकारे लगाये जाते हैं। आर्य समाज संगठन अपने महापुरुषों के चरित्र से प्रेरणा लेकर समाजसेवा एवं परोपकार के कार्य करता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेद आधारित बातों को ही स्वीकार किया तथा पाखण्ड एवं अन्धविश्वास को कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने जीवनकाल में विभिन्न मतावलम्बियों से शास्त्रार्थ किये और वैदिक सिद्धान्तों को प्रचारित-प्रसारित किया। उन्होंने वेदों की ओर लौटने की प्रेरणा दी। महर्षि जी ने आर्य समाज नामक क्रांतिकारी संगठन की स्थापना करते समय ही कुछ नियम बनाये जिसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के पोषक थे। महर्षि दयानन्द जी ने आजादी की बुझती हुई लौ को तीव्र किया और लाखों अनुयायियों ने उनसे प्रेरणा पाकर भारत माता को आजाद कराने में अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। परन्तु आज उनके सम्बन्ध में आपको एक गलत एवं भ्रामण टिप्पणी करते हुए जरा भी लज्जा नहीं आई। महर्षि दयानन्द जी जैसे महापुरुष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को छोटा दिखाने से किसी भी व्यक्ति का कद ऊँचा नहीं हो सकता है और न ही किसी का भला हो सकता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के बारे में अनेक महापुरुषों ने अपने-अपने मत व्यक्त किये हैं। महर्षि अरविन्द योगी ने स्वामी दयानन्द जी के बारे में कहा है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का कद सभी दार्शनिकों में सर्वोच्च है जैसे हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं में एवरेस्ट चोटी का है। इसलिए हमारा आपसे विनम्र निवेदन है कि आप अपने अनर्गल एवं तथ्यहीन शब्दों को वापस लेकर पूरे आर्य जगत से माफी मांगे या आर्य समाज के विद्वानों से शास्त्रार्थ करें। हम नहीं चाहते कि आपकी भारी भूल के कारण आपके समर्थकों को शर्मिन्दा होना पड़े।

सम्पादक - प्रो. विट्ठलराव आर्य

प्रथम स्वाधीनता संग्राम में स्वामी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द का योगदान

—अमरेश मिश्र

स्वामी दयानन्द ने १८५६ में हरिद्वार के नील पर्वत के चंडी मंदिर में डेरा डाला। वहां स्वामी रुद्रसेन ने उन्हें बताया कि भारत की जनता को जगाने के लिए आजादी के आंदोलन के नेता जल्दी ही चण्डी मंदिर आने वाले हैं। कुछ समय बाद तीन–चार अनजान लोग आए और उन्होंने पूछा कि स्वामी दयानन्द कौन है एकांत में बैठकर स्वामी ने उनके साथ लंबे समय क्रान्ति पर चर्चा की। उन पांच लोगों के कहने पर स्वामी जी ने साधु संगठनों को एकजुट करने का काम खुद अपने हाथ में लिया। उन्होंने स्वामी जी से कहा– महाराज ! पेशावर से कलकत्ता और दक्षिण में कर्नाटक तक हजारों भारतीय तैयार हैं, पर साधु समाज का काम अभी पूरा नहीं हुआ है। इन पांच लोगों के साथ दो और क्रान्तिकारियों ने स्वामी जी से संपर्क साधा। वे दोनों थे राजा गोविंद राय और रानी लक्ष्मीबाई। गोविंद राय उत्तर बंगाल के नादौर राज्य के मशहूर रानी भवानी वंश से जुड़े हुए थे। चंडी मंदिर पर उन्होंने बताया कि किस तरह उनका राज्य हड़प लिया गया। उन्होंने स्वामी जी को १,१०१ रुपए समर्पित किए। स्वामी जी उनसे कहते रहे कि उन्हें धन की जरूरत नहीं है, पर राजा गोविन्द राय ने उनकी एक नहीं सुनी। इसी दौरान झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और उनके तीन अन्य अधिकारी स्वामी जी से मिलते हैं। रानी ने आंखों में आंसू भर कर अपनी कहानी कही। उन्होंने कहा–महाराज, मैं एक विधवा हूं। अंग्रेजों ने ऐलान किया है कि वे आपकी इस बहन का राज्य हड़प लेंगे। वे झांसी पर बड़ी सेना के साथ हमला करने की तैयारी में हैं। जब तक मैं जिंदा हूँ तब तक मैं उन्हें अपना खानदानी राज्य हड़पने नहीं दूंगी। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं एक योद्धा के रूप में लड़ते हुए अपना जीवन बलिदान कर सकूं। उस बहादुर महिला के यह शब्द सुन कर स्वामी जी गद्गद हो उठे। उन्होंने कहा– देवी ! यह शरीर शाश्वत नहीं है। वे लोग भाग्यशाली हैं जिनका शरीर किसी कर्तव्य के लिए बलिदान हो जाता है। वे अमर रहते हैं। अपनी तलवार उठाओ और इन विदेशियों से साहस के साथ लड़ो। स्वामी जी का कहना था– जनता का नेतृत्व करना और आग से खेलना एक जैसा ही खतरनाक है। छोटी–सी गलती का मतलब है संपूर्ण विनाश। सावधान रहिए और आजादी का संदेश पूरे भारत में गोपनीय तरीके से फैलाया जाना चाहिए।

११ अक्तूबर १८५५ को हरिद्वार की सभा में स्वामी विरजानन्द ने भाषण दिया और मोहर सिंह को आजादी के योद्धा के रूप में आशीर्वाद दिया। सभा का आयोजन स्वामी पूर्णानन्द ने हरिद्वार की पहाड़ियों में किया था। इस सभा में ५६५ साधु शामिल हुए। इसमें १६५ मुस्लिम साधु और ३७० हिंदू साधु थे। इस सभा में नेत्रहीन संत स्वामी विरजानन्द के साथ उनके बाद में शिष्य रहे स्वामी दयानन्द भी मौजूद थे। उनके अलावा हरियाणा सर्वखाप के मंत्री या प्रमुख मोहनलाल जाट, सेना प्रमुख शिवराम जाट, उप सेना प्रमुख भागवत गूजर और पंडित शोभाराम भी उपस्थित थे। सर्वखाप के अधिकृत दस्तावेज लेखक और संदेशवाहक मीर मुश्ताक मिरासी भी वहां थे। हरियाणा सर्वखाप पंचायत पर हालांकि जाट समुदाय का आधिपत्य था, पर इसमें हरियाणा की सभी हिन्दू और मुसलमान जातियाँ भी भागीदार थीं। हरियाणा के पहलवान ब्रह्मदेव, जो जूनागढ़ अखाड़े के नागा योद्धा हो गए थे, त्यागियों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे जबकि पंडित शोभाराम बरेली से खान बहादुर खान के प्रतिनिधि के तौर पर आए थे।

सभा में फखरुद्दीन और स्वामी पूर्णानन्द ने अपने विचार व्यक्त किए। स्वामी पूर्णानन्द ने न सिर्फ धर्म के पालन पर जोर दिया, बल्कि राष्ट्र को ऊपर उठाने का भी आह्वान किया। स्वामी विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द से कहा कि शास्त्र और अध्यात्म समझने से पहले वे अपना समय राष्ट्र को ऊपर उठाने में लगाएं। दरअसल स्वामी दयानन्द कुंभ मेले में स्वामी पूर्णानन्द से मिले थे और उनसे वेद–शास्त्र सिखाने का आग्रह किया था। इस पर पूर्णानन्द ने कहा था कि वे तो बूढ़े हो चले हैं, पर उनके शिष्य विरजानन्द उन्हें सिखाएंगे।

मोहर सिंह को साथ लेकर स्वामी दयानन्द तुरंत स्वामी पूर्णानन्द के आश्रम पर गए और वहां एक गुप्त बैठक हुई। उसमें बिजरौल (मेरठ) के जाट दादा शाह मल (४२), ढकौली के चौधरी दया सिंह जाट, बहादुर शाह जफर के प्रतिनिधि, नाना साहेब, तात्या टोपे, राजा कुंवर सिंह, बेगम हजरत महल, रंगो बापूजी और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई मौजूद थीं। यहां मोहर सिंह का नाम शामली के जाट चौधरी के रूप में दर्ज है। यह बात रोचक है क्योंकि मोहर सिंह शामली गए थे, जहां उनकी मुलाकात देवबंद के मौलाना मोहम्मद कासिम ननौतवी और सहारनपुर के वलीउल्लाह संप्रदाय के अन्य विद्वानों से हुई थी।

१८५६ में हुई एक अन्य बैठक का जिक्र यहां महत्वपूर्ण है। मथुरा में हुई इस बैठक में स्वाधीनता संग्राम के सारे बड़े नेता मौजूद थे। इसका नेतृत्व स्वामी विरजानन्द कर रहे थे और इसकी कार्यवाही मीर मुश्ताक मरासी दर्ज कर रहे थे। मिरासी का वर्णन बेहद रोचक है– १८५६ सन् यानी संवत १९१३ मथुरा में एक पंचायत हुई। इस बैठक में हिन्दू, मुसलमान और

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

अन्य समुदाय के लोगों ने हिस्सा लिया। पंचायत में नेत्रहीन साधु विरजानन्द को पालकी में लाया गया। जब वे पहुँचे तो वहां मौजूद सभी लोगों ने उन्हें सम्मान दिया। जब वे मंच पर बैठे तो सभी हिन्दू और मुसलमान फकीरों ने आदर देने के लिए उनका पैर चूमा। नाना साहेब पेशवा, मौलवी अजीमुल्लाह खान, रंगो बापू और बादशाह बहादुर शाह जफर के बेटे ने उन्हें सम्मान के साथ अशर्फियां भेंट कीं।

इसके बाद स्वामी विरजानन्द ने अपनी बात शुरू करते हुए पहले ईश्वर की वंदना की। फिर उन्होंने कहा–स्वाधीनता ही संपत्ति है और गुलामी छल है, एक धोखा है। देश पर स्थानीय लोगों का शासन विदेशी लोगों के शासन से सैकड़ों गुना ज्यादा बेहतर है। दूसरों की गुलामी अपमान और शर्म का कारण होती है। ये क्रूर लोग हमारी जनता पर जबरदस्ती शासन कर रहे हैं। वे हमारे राजाओं का अपमान करते हैं। ये क्रूर लोग हमारी जनता पर जबरदस्ती शासन कर रहे हैं। वे हमारे राजाओं का अपमान करते हैं। हमारे लोगों से जानवरों जैसा व्यवहार करते हैं। ईश्वर की नज़र में सभी लोग बराबर हैं, पर ये क्रूर विदेशी उन्हें बराबर नहीं मानते। विदेशियों में कुछ अच्छाइयाँ जरूर हैं पर सच्चाई यह है कि मामले के भीतर झांकिए तो उनका सुर बदला मिलता है। वे हमारी नेक सलाह और कुदरत की अच्छाइयों को खारिज कर देते हैं। इसीलिए हम इस धरती के लोगों से अपील करते हैं कि यह हर नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह देशभक्त बने और एक दूसरे को भाई माने। जो कोई हिन्दुस्तान में रहता है वह एक दूसरे का भाई है और बहादुरशाह जफर हमारे शासक हैं।

विरजानन्द का यह भाषण १८५७ के दबे पक्ष को प्रकाशित करता है। इससे यह पता चलता है कि सनातन धर्म के दर्शन ने भारत में बहादुर शाह जफर को दैवीय समर्थन दिया था और किस तरह से सनातन धर्म और इस्लाम के बीच ऐतिहासिक गठजोड़ कायम किया था। अंग्रेजों और बंबई व कलकत्ता में बैठे उनके चंद बुद्धिजीवियों को यह अहसास नहीं था कि भारत पर मुगलों का शासन सनातन धर्म के समर्थन से चल रहा था। पहाड़ों में रहने वाले ऋषियों और मुनियों की औरंगजेब सहित सभी मुगल दरबारों में पहुँच थी। मुगल दरबार में यह मान्यता थी कि जब तक पहाड़ों में रहने वाले ऋषि–मुनि तपस्या करते रहेंगे भारत और मुगल वंश सुरक्षित है। ●

आवश्यक सूचना

आर्य दैनन्दिनी–2025 (डायरी) में नाम तथा मोबाईल नम्बर के प्रकाशन हेतु

जैसा कि आप सभी को विदित है कि आर्य प्रकाशन द्वारा प्रत्येक वर्ष 'आर्य दैनन्दिनी' नामक डायरी का प्रकाशन किया जाता है। इसमें वैदिक संन्यासियों, विद्वानों, विदुषियों, भजनोपदेशकों, प्रमुख आर्य समाजों तथा आर्ष गुरुकुलों के नाम व दूरभाष नम्बर प्रकाशित होते हैं। अतः आपसे निवेदन है कि आप अपने नाम के साथ पूरा पता तथा दूरभाष नम्बर भेजें, जिससे सही नम्बर प्रकाशित किया जा सके। यदि आप में से किसी का नम्बर अथवा पता बदल गया है तो आप अपना नया नम्बर व पता भी भेजें।

आप 10 सितम्बर, 2024 तक पत्र या ईमेल – aryaprakashan@gmail.com अथवा 9868244958 पर वाट्सएप द्वारा भेजने की कृपा करें। जिससे उसे भली प्रकार से आर्य दैनन्दिनी में प्रकाशित किया जा सके।

सच्चरित्रता की नींव – धर्म

– आचार्य श्रवण कुमार (व्याकरण दर्शनाचार्य)

सभी सच्चे धर्मनिष्ठ लोगों में सद्गुण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। ऋषि दयानन्द, महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य, गुरुनानक, सन्त कबीर, गुरु रामदास इत्यादि महापुरुषों में सद्गुणों की मात्रा इतनी अधिक दिखाई देती है कि साधारण व्यक्ति उसे देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। इस प्रकार के धर्मशील महापुरुष अपने प्रभाव से सर्वसाधारण जनता के चारित्रिक मानदण्ड को भी बहुत ऊँचा कर देते हैं। इस प्रकार जनता में चारित्रिक गुण उत्पन्न करने की दृष्टि से धर्म का बड़ा ऊँचा और महत्त्वपूर्ण स्थान है।

धर्म और ईश्वर का विरोध करने वाले लोग कहते हैं कि धर्म को मानने की क्या आवश्यकता है? धर्म को मानने वाले लोग धर्म का यही तो लाभ बताते हैं कि उससे हमारे अन्दर सत्य, न्याय, दया, तप, त्याग और उपकार आदि चरित्र सम्बन्धी सद्गुण उत्पन्न होते हैं। हम इन चरित्र सम्बन्धी सद्गुणों को अपने भीतर धर्म के बिना भी उत्पन्न कर सकते हैं। अनेक नास्तिक लोगों में ये सद्गुण बड़ी ऊँची मात्रा में पाए जाते हैं। हम अपने व्यवहार में इन सद्गुणों का पालन करते रहेंगे। हमें धर्म को मानकर आत्मा, परमात्मा, लोक, परलोक और कर्मफल आदि के जंजाल में पड़ने की क्या आवश्यकता है?

धर्म विरोधियों का यह कथन ऊपर–ऊपर से सुनने में रोचक प्रतीत होता है। गहराई में विचार करने पर पता चलता है कि धर्म को माने बिना, आत्मा–परमात्मा की सत्ता और लोक–परलोक तथा कर्मफल के सिद्धान्त को मानें बिना चरित्र सम्बन्धी सद्गुण खड़े नहीं रह सकते। हमारी सच्चरित्रता आत्मा–परमात्मा और लोक–परलोक तथा कर्मफल के सिद्धान्त के आधार पर ही टिकी हुई है।

यदि हम नास्तिक लोगों की बातें मानकर भौतिकवादी बन जाएँ और यह मानने लग पड़े कि आत्मा नाम की कोई सत्ता नहीं है, जिसे हम आत्मा कहते हैं वह तो प्राकृतिक जड़ पदार्थों के संयोग का परिणाम है, जिस प्रकार आग और पानी के संयोग का परिणाम जल की उष्णता है। अथवा जैसे पोटैशियम फैरो साइनाइड के हल्के पीले से रंग के घोल में फैरिक क्लोराइड का हल्के पीले से रंग के घाल मिला देने से उसमें गहरा नीला रंग आ जाता है। हमारे उत्पन्न होने से पूर्व हमारा आत्मा नहीं था, और हमारे मर जाने के बाद न कोई अगला जन्म होगा, बस जो कुछ है यह हमारा वर्तमान जन्म ही है। इस जन्म में हम जो कुछ कर लें, कर लें, इस जन्म में हम जो कुछ सुख भोग भोगना चाहें भोग लें, आगे कुछ नहीं होने और मिलने वाला है, आँख मिची और सब कुछ समाप्त, भौतिकतावादी नास्तिक बनकर यदि हम मानने लग पड़े कि परमात्मा की भी सत्ता कुछ नहीं है – इस जगत् को बनाने वाला और चलाने वाला तथा हमारे कर्मों का फल देने वाला परमात्मा कोई नहीं है तो हमारी सच्चरित्रता ठहर नहीं सकेगी।

जब हमारा केवल यही जन्म है और इसी में हम जो कर लें और जो सुख भोग भोगना चाहें भोग लें, तो हममें बुरे कर्मों से बचने की प्रवृत्ति नहीं होगी। तब हमारे अन्दर यह प्रवृत्ति जाग उठेगी कि यह थोड़ा सा तो समय हमारे पास है जिसमें हम जो सुख भोगना चाहें भोग सकते हैं, इसीलिए जिस किसी तरह भी हमें अपने जीवन को सुखी बनाकर रखना चाहिए। इस प्रवृत्ति के वश में आकर हम अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए बुरे कर्म करने से रोक नहीं पायेंगे। बुरे कर्मों का दण्ड देने वाला परमात्मा तो कोई है ही नहीं, जिसका हमें भय रहे। अगला जन्म भी कोई नहीं है जिसमें हमें बुरे कर्मों का फल भोगना पड़े। तो हमें बुरे कर्मों से बचकर सच्चरित्र बनने की प्रेरणा क्यों होगी?

आत्मा–परमात्मा की सत्ता, पुनर्जन्म और कर्मफल के सिद्धान्त को न मानकर केवल यही एक जन्म मानने की व्यवस्था में तो हमारा उद्देश्य केवल अपने इस वर्तमान जीवन को सुखी बनाना रह जायेगा। हमें अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए झूठ–फरेब, धोखे–धड़ी और अन्याय–अत्याचार का भी अवलम्बन करना पड़े तो वह कर लेना चाहिए। इस प्रकार के दुराचरणों से हमें क्यों रुकना चाहिए?

कहा जा सकता है कि जैसे हम सुखी बनना चाहते हैं वैसे ही और लोग भी सुखी बनना चाहते हैं। इसलिए झूठ–फरेब आदि का सहारा लेकर हमें दूसरों के जीवन को दुःखी नहीं बनाना चाहिए। परन्तु यदि कोई अपनी यह मनोवृत्ति बना ले कि दूसरे लोग मेरे किसी आचरण से दुःखी होते हैं तो होते रहें, मुझे तो अपने जीवन को सुखी बनाना है। मैं तो जैसे भी होगा अपने को सुखी बनाऊँगा। तो ऐसी मनोवृत्ति वाले व्यक्ति को दुराचरण से कैसे रोका जा सकता है? कहा जा सकता है कि दूसरे लोग उसके दुर्व्यवहारों से तंग आकर उसे पकड़ लेंगे और दण्डित करेंगे और इस प्रकार उसे अपने बुरे कर्मों का फल दुःख मिलेगा, अतः उसे बुरे कर्मों से बचने की सीख स्वयं मिल जायेगी कि उसे बुरे कर्मों से बचना चाहिए। परन्तु पकड़ में तो कोई व्यक्ति अपनी असावधानी और गलती से आता है। यदि कोई व्यक्ति पूर्ण सावधान होकर चतुराई और बुद्धिमत्ता से दूसरों के साथ दुर्व्यवहार करके अपने को सुखी बनाता रहे तो ऐसे व्यक्ति को दुराचरण से कैसे रोका जा सकेगा? फिर यदि कोई यह सोच ले कि कभी अपनी असावधानी से पकड़ भी लिया गया और उससे दण्डित होकर कुछ दुःख भोगना भी पड़ गया तो क्या बात है? अधिकतर तो मैं दूसरों को ठग और लूटकर अपने जीवन को सुखी ही रखता हूँ, तो ऐसे व्यक्ति को दुराचरण से कैसे रोका जा सकेगा? यदि हम छिपकर पाप करते हैं? उससे तो हम अपने जीवन को सुखी बना रहे हैं। आत्मा–परमात्मा की सत्ता, पुनर्जन्म और कर्मफल के सिद्धान्त को न मानने वाले भौतिकवादी नास्तिकों के पास इन प्रश्नों का कोई समाधान नहीं है।

आत्मा–परमात्मा आदि की सत्ता को स्वीकार न करने की अवस्था में तो मनुष्य की प्रवृत्ति स्वभावतः चार्वाकों की सी हो जायेगी और वह चार्वाकों के स्वर में स्वर मिलाकर कहने लगेगा – 'मौत से कोई भी बच नहीं सकता इसलिए जब तक जीना है सुख से जीना चाहिए। क्योंकि मरने के बाद जलकर राख हो जाने के पीछे सुख भोगने के लिए शरीर कहाँ से मिलेगा? जब तक जीना है सुख से जीना चाहिए और अपने को सुखी बनाने के लिए ऋण लेकर भी घी पीते रहना चाहिए।

फिर एक बात और यहाँ विचारने की है। आत्मा और परमात्मा को न मानने की अवस्था में अच्छे और बुरे, सच्चारित्रय का भेद कैसे किया जा सकेगा? हमारे किसी कर्म को अच्छा या बुरा कहकर उसकी अच्छाई और बुराई का निर्माण करने वाला कोई परमात्मा या आत्मा तो है ही नहीं। भौतिकवादी नास्तिकों के मत में परमात्मा की सत्ता तो बिल्कुल ही नहीं है। आत्मा की भी वास्तविक सत्ता नहीं है। आत्मा या चेतना जो कुछ है केवल प्राकृतिक जड़ पदार्थों के एक विशेष प्रकार के संयोग का परिणाम है। जिस प्रकार आग और जल के एक विशेष संयोग का परिणाम जल की उष्णता है। ऐसी अवस्था में, जिस प्रकार जल की उष्णता प्राकृतिक होने के कारण जड़ ही है, उसी प्रकार हमारे शरीर के प्राकृतिक जड़ पदार्थों के संयोग का परिणाम होने के कारण प्राकृतिक होने से हमारा आत्मा भी वस्तुतः जड़ ही है, ऐसा हमें मानना पड़ेगा और हमें यह भी मानना पड़ेगा कि यह हमारा आत्मा कोई पृथक पदार्थ नहीं, हमारे शरीर के प्राकृतिक पदार्थों में रहने वाला उन पदार्थों का एक गुणमात्र है। तो जिस आत्मा की कोई पृथक् सत्ता ही नहीं है, जो हमारे शरीर के प्राकृतिक जड़ पदार्थों का ही एक गुणमात्र है और जड़ है, वह आत्मा हमारे कर्मों की अच्छाई और बुराई का निर्णय किस प्रकार कर सकेगा? इस प्रकार हमारे कर्मों की अच्छाई या बुराई का निर्णय करने वाली कोई सत्ता न होने के कारण, हमारे कोई भी कर्म अच्छे या बुरे नहीं रहेंगे। हमारे सभी कर्म एक जैसे ही हो जायेंगे। हम जैसा चाहें कर लें। हम किसी के किसी कर्म को दुराचरण या अनैतिक और सदाचरण या नैतिक नहीं कह सकेंगे।

इसलिए धर्म के बिना सच्चरित्रता की नींव खड़ी नहीं रह सकती। धर्म आत्मा को भी मानता है और परमात्मा को भी। आत्मा अपनी स्वतन्त्रता से अच्छे या बुरे कर्म करता है। अपने कर्मों का फल भोगने में आत्मा परमात्मा के अधीन है। बुरे कर्मों का फल आत्मा को परमात्मा की व्यवस्था के अधीन रहकर दुःख के रूप में भोगना पड़ता है, और अच्छे कर्मों का फल सुख के रूप में। परमात्मा की व्यवस्था के अधीन रहकर कर्मों का फल आवश्यक रूप से कर्मफल भोग से आत्मा बच नहीं सकता है। कर्मफल प्रदाता परमात्मा की व्यवस्था के अधीन रहकर कर्मों का फल आवश्यक रूप से भोगे जाने का यह सिद्धान्त आत्मा को बुरे कर्मों से दूर रहने की प्रेरणा करता है। धर्म में परलोक और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भी माना जाता है। यदि इस जन्म में हमें परमात्मा ने हमारे कर्मों का फल दुःख के रूप में नहीं दिया है तो अगले जन्म में दिया जायेगा, उससे छूट नहीं सकते, अगले जन्म में भी फल मिल सकने का यह सिद्धान्त हमारे मन में बुरे कर्मों के प्रति और भी अधिक भय उत्पन्न कर देता है। कर्मफल भोग के इस भय के कारण हम दुराचरणों से बच कर सदाचरण से रहने का प्रयत्न करने लगते हैं। ऐसा करते–करते हम स्वभाव से ही अच्छे आचरण करने वाले बन जाते हैं। परमात्मा के भय के कारण बुरे कर्मों से बचे रहने की बात हमारे मन की पृष्ठभूमि में बहुत गहराई से बैठी रहती है। धर्म सृष्टि के आरम्भ से इस प्रकार हमें सच्चारित्र्य सिखाता आ रहा है।

धर्म द्वारा की जाने वाली अपनी इस सेवा के कारण संसार को धर्म का धन्यवाद करना चाहिए। जिस दिन संसार से धर्म को सर्वथा मिटा दिया जायेगा, जिस दिन लोग आत्मा, परमात्मा, लोक और परलोक को मानना सर्वथा छोड़ देंगे, जिस दिन कर्मफल भोग के सिद्धान्त में लोगों का विश्वास बिल्कुल नहीं रहेगा, जिस दिन परमात्मा की भक्ति द्वारा परमात्मा के गुणों को अपने भीतर धारण करने वाले धर्मनिष्ठ लोग सर्वथा पैदा होना बन्द हो जायेंगे, उस दिन के थोड़े समय के पश्चात् संसार से सच्चरित्रता समाप्त हो जायेगी। आज संसार के लोगों में जितनी सच्चरित्रता दिखती है उसका मूल स्रोत धर्म ही है।

नास्तिक लोगों में जो कुछ सच्चरित्रता दिखाई पड़ती है उसका मूल स्रोत भी धर्म ही है। धर्म द्वारा सिखाए गए, परम्परा से चले आ रहे सच्चरित्रता के तत्त्वों को नास्तिक लोगों ने भी स्वीकार कर लिया है। जैसे गंगा से निकली हुई नहर में से निकली हुई अन्य नहर बहुत दूर के खेतों में जाकर पानी दे देती है और उन खेतों और उनके किसानों को पता नहीं होता कि यह पानी गंगा का है, इसी प्रकार नास्तिकों को भी पता नहीं है उनमें जो सच्चरित्रता है वह मूल रूप में धर्म की गंगा से ही निकलती है। नास्तिकता का दर्शनशास्त्र, जैसा ऊपर दिखाया गया है, स्वयं सच्चरित्रता को जन्म नहीं दे सकता।

जब धर्म नहीं रहेगा तो सच्चरित्रता भी नहीं रहेगी और संसार में अन्धपरम्परा चल पड़ेगी। कोई किसी को सन्मार्ग न दिखा सकेगा। तब संसार के लोगों में मात्स्य – न्याय चलने लगेगा। जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है वैसे ही शक्तिशाली लोग दुर्बल लोगों को खाने लग पड़ेंगे। उस घोर अधर्म की अवस्था में न स्वतन्त्रता रहेगी और न किसी राष्ट्र की किसी प्रकार कोई उन्नति।

परन्तु संसार यह सुनकर निश्चिन्त रहे कि राम, कृष्ण, दयानन्द, विवेकानन्द, महात्मा गांधी जैसे महापुरुष धर्मनिष्ठ लोगों के समय–समय पर जन्म लेते रहने के कारण वह बुरा दिन कभी न आने पायेगा। धर्म को नास्तिकवाद से भय नहीं है। आत्मा–परमात्मा की सत्ता और पुनर्जन्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए धर्मवालों के पास प्रबल तर्क हैं। पहले भी नास्तिक लोग आते रहे हैं। हम आस्तिक लोग अपने तर्कों से उनकी बातों का खण्डन करते रहे हैं।

यहाँ एक बात और भी देखने की है। सच्चरित्र रहने के लिए हमें सच्चरित्र पुरुषों की संगति की आवश्यकता पड़ती है। अच्छी बुरी जैसी संगति में रहा करते हैं वैसे बन जाया करते हैं। संसार में हमें पूर्ण सच्चरित्र पुरुषों की संगति प्रायः प्राप्त नहीं होती। धर्म इस सम्बन्ध में भी हमारी सहायता करता है। परम पुरुष परमात्मा की उपासना व भक्ति करके सबसे अधिक सच्चरित्र सत्ता की संगति प्राप्त होती है। उपासना द्वारा प्रभु की संगति में बैठे रहने से हमारे अन्दर चरित्र सम्बन्धी सब सद्गुण आ जाते हैं।

इस प्रकार विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि बिना धर्म के सच्चरित्रता की दीवाल खड़ी नहीं हो सकती। किसी भी दृष्टि से हम देखें, अन्ततः हमें सच्चरित्रता का आधार धर्म को ही मानना पड़ेगा। धर्म की वृद्धि सच्चरित्रता की वृद्धि है। धर्म की हानि सच्चरित्रता की हानि है। सच्चरित्रता की वृद्धि से ही समाज में सुख शान्ति की स्थापना होगी, परस्पर एक दूसरे की उन्नत्यर्थ मनुष्य अग्रसर होंगे। इसलिए हम सभी को चाहिए कि धर्म की वृद्धि के लिए मन–तन–धन से समर्पित होकर सच्चरित्रता नींव के मजबूत पत्थर बनकर अपनी कर्त्तव्य पारायणता का परिचय दें।

– 'पाणिनि महाविद्यालय' रेवली, सोनीपत

आर्य समाज की दृष्टि में
योगेश्वर श्रीकृष्ण

- कृष्णदेव शास्त्री

योगीराज श्रीकृष्ण जी देश की उन महान् विभूतियों में से एक हैं जिनका निर्मल यश आज भी विद्यमान है। आज से पांच हजार वर्ष पूर्व उनका जन्म कंस के कारागृह में अर्धरात्रि को हुआ। जिनके जन्म से अन्धेरा उजाले में बदल गया। अन्याय की नीवं हिल गई, अत्याचार कांप उठा, पीड़ित तथा सताये हुए प्राणी आनन्दित हो उठे, उनमें पुनः नवजीवन का संचार होने लगा। परन्तु हमारे लिए शर्म की बात है, कि हम ऐसे दिव्यात्मा को अभी तक माखन चोर, गोपियों के साथ खेलने तथा रासलीला करने के नाम से बदनाम किए जा रहे हैं। ''चोर-जार-शिरोमणि'' के रूप में जिस कृष्ण का चित्रण किया है वह सर्वथा गलत है। क्योंकि इसका अनुमोदन तो महाभारत में भी नहीं है। इस प्रकार आज श्रीकृष्ण का सत्चरित्र मिथ्या और अलौकिक घटनाओं की भस्म में ऐसा छिप गया है कि उसका पता लगाना अब मुश्किल पड़ रहा है। किन्तु फिर भी जितना सत्य उपलब्ध होता है उसी के आधार पर आर्य समाज उन्हें सूर्य और चांद की तरह स्वच्छ पवित्र तथा निर्मल मानता है।

आर्य समाज की दृष्टि में श्रीकृष्ण योगी थे जितेन्द्रिय थे और जितेन्द्रिय होने के कारण अपने शरीर की 16 हजार नस-नाड़ियों को अपने वश में किए हुए थे। परन्तु इस भौतिकता रूपी चहल-पहल के वातावरण में लोगों ने अर्थ का अनर्थ कर उन्हें 16 हजार नारियों का स्वामी बता दिया। और बिना सोचे समझे ही उन बातों पर विश्वास करने लगे हैं। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि एक महान् उदारचेता वा आप्तपुरुष का चरित्र जितना महान् व पवित्र है उसको उनके नकली भक्तों ने उतना ही निकृष्ट व अपवित्र बना दिया है। उन्होंने यह कभी नहीं सोचा कि हम जैसे हैं वैसे ही रह लें, किन्तु अपने प्रेरणा देने वाले एक आदर्श पुरुष को कलंकित तो न करें। यदि हम श्रीकृष्ण के तुल्य नहीं बन सकते तो उन्हें अपने सदृश्य नराधम तो न बनाएं।

पुराणकारों ने श्रीकृष्ण के आदर्श को सम्मुख न रखकर देवलीलाओं की अलौकिक कल्पना कर मानों आकाश में बिना पंख के ही पंछी उड़ा दिया है। श्रीकृष्ण तो देवता थे। उनकी विभूति तो मानवेतर कार्यों में ही प्रकट हो सकती है। उन्होंने तो एक पत्नीव्रत का पालन कर प्रद्युम्न जैसा वीर पुत्र प्राप्त किया। उनमें शूरता, वीरता, तेजस्विता, नम्रता, शालीनता, चतुराई, धैर्य, साहस आदि गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे। वे क्षत्रिय समाज में सर्वश्रेष्ठ वीर समझे जाते थे। जिसके कारण उन्हें कभी कोई परास्त नहीं कर सका था। उन्होंने कंस तथा शिशुपाल जैसे राजाओं को उदण्डता के कारण उनकी जीवन लीला समाप्त कर, जरासंध को भी भीमसेन से मरवा दिया था। काशी, कलिंग गान्धार आदि के राजाओं तथा उनके योद्धाओं को परास्त किया। उन्हें राष्ट्र पुरुष और इतिहास पुरुष की दृष्टि से अद्वितीय कहा जा सकता है। उन्होंने इस राष्ट्र को अपनी बुद्धि से इतना बलवान तथा अपराजेय बना दिया था कि महाभारत के पश्चात् लगभग 3000 वर्ष तक अनेक विदेशी शक्तियां बार-बार प्रयत्न करने पर भी आर्यावर्त को खण्डित नहीं कर सकी। अतः श्रीकृष्ण वेद-वेदांग के अद्वितीय पण्डित तथा शारीरिक बल में अतुलनीय थें उनका गुण, कर्म और स्वभाव आप्त पुरुषों के सदृश है। वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में अन्तरात्मा से प्रेरित थे, इसीलिए उनका जीवन एक ऐसी पहाड़ी नदी के समान है, जो उछलती-कूदती चट्टानों को तोड़ती दुर्गम उपत्यकाओं में अपना मार्ग बनाती और बरसात में अपने कूल किनारों की मर्यादाओं को भंग करती हुई लगातार आगे बढ़ती चली जाती हैं।

अवतारवादी श्रीकृष्ण को भगवान् का अवतार मानते हैं। जिसकी पुष्टि में गीता का श्लोक प्रस्तुत करते हैं कि:-

यदा-यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानं धर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां, विनाशय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय, संभवामि युगे-युगे।।

अर्थात्- श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि होती है तथा अधर्म, अन्याय और अत्याचार बढ़ जाता है तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ। साधुओं के रक्षण के लिए दुष्टों के दलन के लिए और धर्म की स्थापना के लिए मैं प्रत्येक युग में उत्पन्न होता हूँ।

यह विचारधारा वेद के प्रतिकूल तो है ही स्वयं गीता और श्रीकृष्ण के सिद्धान्तों के भी प्रतिकूल है। श्रीकृष्ण तो वेद-वेदांग के मर्मज्ञ थे। वेद विरुद्ध बातों का उपदेश नहीं कर सकते वे तो सदैव ही अज्ञान, अन्याय और अभाव के विरुद्ध रहे हैं। इसलिए अपने आने वाले समय में भी मैं जन्म लेकर इधर जाऊँ, तब-तब समाज सेवा, धर्म की रक्षा, अधर्म का नाश, साधुओं का रक्षण, दुष्टों का दलन तथा धर्म की स्थापना के लिए ही मेरा सदुपयोग हो सके। परन्तु हमारे लिए यह शर्म की बात हे कि हम उन्हे अवतारवाद के सिद्धान्त में फंसाकर अपनों से भी ऊपर ईश्वर के रूप में प्रदर्शित कर रहे हैं। जो कि उनकी गरिमा के लिए सर्वथा अनुपयुक्त ही है। क्योंकि श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि:-

न जायते म्रियते वा कदाचित्, नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः, न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

अर्थात्- वह परमात्मा न उत्पन्न होता है न मरता है। वह होकर भी नहीं होता, वह अज है, नित्य है। निरन्तर प्राचीन है। शरीर के नाश होने से वह नाश नहीं होता। इसी प्रकार चारों वेदों में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जहां ईश्वर को शरीरधारी कहा गया हो। वेद में तो ईश्वर को ''अकायमस्नाविरम्'' अर्थात् शरीर और नश-नाड़ी से रहित कहा गया है। वह तो निराकार रूप में सर्वव्यापक होकर हमारा पालन-पोषण करता है। वह अजर है, अमर है शरीर धारण करने से तो उसके ये गुण समाप्त ही हो जाते हैं। अतः आर्य समाज की दृष्टि में श्रीकृष्ण न तो मानव श्रेणी के निन्दनीय हैं और न ही मानव श्रेणी से ऊपर ईश्वर के रूप में है अपितु एक आदर्श महापुरुष हैं। जिसके महाभारत का युद्ध एवं गीता के उपदेश सीधे सच्चे प्रमाण है। जब सारा महाभारत कालीन समाज युद्ध के समय सामूहिक भय और सामाजिक त्रास्त से ग्रस्त था। तब ऐसे समय में श्रीकृष्ण कमल की तरह पानी में रहकर भी सर्वथा निर्लिप्त थे। युधिष्ठिर से लेकर धृतराष्ट्र और भीष्म पितामह तक सभी लोग टूटते हैं। घबराते हैं परन्तु एकमात्र श्रीकृष्ण ही ऐसे हैं जो न कभी टूटते हैं न घबराते हैं वे न पछताते हैं, न रोते हैं और न ही जय-पराजय की चिन्ता करते हैं अपितु वे अनासक्त भाव से घटनाओं का संचालन करते हैं। इसलिए वे नरोत्तम, पुरुषोत्तम और नर से नारायण बनने की क्षमता रखते हैं।

आर्य समाज की दृष्टि में श्रीकृष्ण नीति के पुतले, शील की प्रतिमा, सदाचार के अवतार, वेद विद्या के सागर, आदर्श साम्राज्य के निर्माता, शूर-शिरोमणि, शीलवान तथा निष्ठावान थे। वे ध्येयवादी के साथ व्यवहारवादी भी थे। वे गृहस्थ जीवन के प्रेमी होने के साथ-साथ अत्यन्त संयमी और योगविद्या में पारंगत योगेश्वर भी थे। वे राजा न थे, बल्कि राज निर्माता थे। तथा महाभारत के श्रेष्ठ पुरुष भी वही थे। उनके समान प्रगल्भ बुद्धिशाली, कर्तत्ववान, प्रज्ञावान, व्यवहार कुशल, ज्ञानी एवं पराक्रमी पुरुष आज तक इस संसार में नहीं हुआ। संक्षेप में निःसंकोच कहा जा सकता है कि श्रीकृष्ण भारत की संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता तथा राष्ट्रधर्म के मूर्तिमन्त्र प्रतीक है।

अन्त में मैं आप लोगों से यही निवेदन करूँगा कि वर्तमान समय में हम इस पावन पर्व जन्माष्टमी पर श्रीकृष्ण के चित्र की पूजा न कर उनके उज्ज्वल धवल चरित्र की पूजा करें। राष्ट्र की एकता के लिए हम उनके चारित्रिक गुणों को अपने जीवन में धारण कर सारे संसार को श्रेष्ठ बनाते हुए सन्मार्ग पर चलें जिससे हमारी सभ्यता और संस्कृति सुरक्षित रह सके और यह भारतवर्ष फिर से विश्व गुरु कहलाए।

देवतुल्य महापुरुष श्रीकृष्ण जी महाराज थे।
वे थे ईश्वरभक्त और परम योगीराज थे।।
देवकी माता, पिता वासुदेव के लाल थे।
दुष्ट नाशक, धर्मरक्षक, सर्वप्रिय गोपाल थे।।
हम प्रण करते हैं कि वैदिक संस्कृति की शाम नहीं होने देंगे।
योगेश्वर श्रीकृष्ण के पवित्र-चरित्र को बदनाम नहीं होनें देंगे।।
जब तक नभ में सूरज और चांद रहेगा।
तब तक हम उनकी महानता को गुमनाम नहीं होनें देंगे।।

महर्षि दयानन्द का दिव्य सन्देश

– सोमदेव शास्त्री, अध्यक्ष वैदिक मिशन मुम्बई

विगत हजारों वर्षों से शैव-वैष्णव शाक्यादि सम्प्रदाय परमात्मा के नामों को लेकर परस्पर कलह कर रहे थे, एक दूसरे के प्रति घृणा, नफरत, ईर्ष्या और द्वेष फैला रहे थे। परमात्मा को विष्णु मानने वाले भक्त घोषित कर रहे थे कि जो ब्राह्मण वैष्णव नहीं है अर्थात् जो विष्णु की भक्ति नहीं करता, उसका मुंह नहीं देखना चाहिए। उससे बात नहीं करनी चाहिए। किमत्र बहुनोषतेन ब्राह्मणा येद्र व वैष्णवाः, स्प्रष्टव्या ने यक्षव्या न द्रष्टव्याः कदाचन! (कि. पु.)। इसी प्रकार परमात्मा को शिव मानने वाले शैव भक्त कहते हैं कि जो शिव की पूजा नहीं करते वे राजा सहित ऐरव (भयानक) नरक में जाते हैं। शिवलिंग समुत्सृज्य यजन्ते मान्य देवता, सहदेवेन स नृपः ऐरवं नरकं प्रजेत्। (कि. पु.)। इतना ही नहीं यहाँ तक घृणा फैलाई गयी थी कि यदि पागल हाथी रास्ते में आ रहा है और लोगों को मार रहा है तो मर जाना किन्तु अपनी सुरक्षा के लिए जैन मन्दिर में मत जाना। हस्तिनाऽपिताड्यमानो न गच्छेत् जैन मन्दिरम्।

धर्म और ईश्वर के नाम पर फैली हुई घृणा और नफरत को दूर करते हुए ऋषि दयानन्द ने समझाया कि धर्म घृणा नहीं प्रेम से मिलकर रहना सिखलाता है। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे (यजु.) ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि नामों को लेकर कलह नहीं करना चाहिए, क्योंकि परमात्मा एक है उसके नाम अनेक हैं। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (वेद), देव दयानन्द की मानव समाज के लिए यह बहुत बड़ी देन रही है। जिस आचरण या व्यवहार से मानव मात्र की रक्षा होती है उसे धर्म कहते हैं। धर्मो धारयते प्रजाः जो सद् व्यवहार हम दूसरों से अपने लिए चाहते हैं वैसा व्यवहार हमें दूसरों के साथ करना चाहिए। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। कोई भी व्यक्ति नहीं चाहता है कि मेरे साथ कोई छल, कपट करे या मुझे कष्ट पहुँचावे या मेरे पदार्थों की कोई चोरी करे तो उसे भी दूसरों के साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए, इसे धर्म कहते हैं। ऐसा व्यवहार परस्पर सभी मनुष्य एक-दूसरे के साथ करने लगें तो सभी सुरक्षित रहेंगे, यही धर्म है जिसके लिए कहा गया है कि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' धर्म का कोई बाह्य चिन्ह नहीं होता, न लिंग धर्म कारणम् अर्थात् कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता जो धोती पहनता है वह धर्मात्मा और जो नहीं पहनता वह अधार्मिक। अतः धोती पहनना, दाढ़ी, चोटी आदि धर्म के लक्षण नहीं हैं यह ऋषि दयानन्द ने समझाया है।

स्वामी दयानंद ने यह स्वीकार किया है कि भारतीय पुनरूत्थान और आधुनिकीकरण भारत की प्राचीन वैदिक संस्कृति के आधार पर ही संभव है। स्वामी दयानंद का भारतीय समाज पर ज्ञान अधिक गहरा था, और उनका भारतीय परम्परा का अध्ययन अधिक पूर्ण माना जा सकता है। स्वामी दयानंद में प्रखर प्रतिभा और गहरी अन्तर्दृष्टि थी, साथ ही उनमें मानवीय संवेदना की बहुत व्यापक और आन्तरिक क्षमता थी। इसलिये घर से बाहर निकलने के बाद लगभग चौबीस वर्ष उन्होंने देश के स्थान-स्थान पर सत्य की खोज में बिताये और सारे भारतीय जन-समाज का बहुत व्यापक अनुभव प्राप्त किया। अपनी सूक्ष्म संवेदना के कारण ही उनको भारतीय समाज के जीवन का यथार्थ ज्ञान हो सका। मूलशंकर घर से निकले थे संसार के बंधनों से मुक्त होकर शुद्धस्वरूप शिव की खोज में और दयानंद को मिला दुःखी, संतप्त, हीन भाव से ग्रस्त, अनेक कुरीतियों, पाखण्डों, दुराचारों से पीड़ित, कुंठित, गतिरूद्ध भारतीय समाज। और फिर वे व्यक्तिगत मोक्ष के मार्ग को भूल कर अपने समाज के उद्धार में प्राण-पण से लग गये।

स्वामी दयानंद ने वेदों के प्रामाण्य पर ही यह घोषित किया कि जो हमारे विवेक को स्वीकार्य नहीं, उसके त्याग में हम को एक क्षण का विलम्ब नहीं करना चाहिए। यदि वेदों में ज्ञान के बदले अज्ञान है, मानवीय उच्च मूल्यों के बजाय घोर हिंसावृत्ति, भोगवाद और यथार्थ की उपासना है तो उनको अस्वीकार कर देना चाहिए। (उन्होंने निघण्टु, निरूक्त अष्टाध्यायी और महाभाष्य जैसे व्याकरण ग्रन्थों के आश्रय से वेद- मन्त्रों की सुसंगत और व्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत की।) इस दृष्टि से गहन अध्ययन करने के बाद उन्होंने घोषित किया कि वेद, वैदिक साहित्य और अन्य आर्ष गन्थ ही प्रमाण्य हैं, उनमें सत्य-ज्ञान सुरक्षित है, इसी में भारतीय संस्कृति के उच्चतम मूल्य सुरक्षित हैं और ये मूल्य भारतीय समाज और व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों को मौलिक सृजनशीलता से गतिशील करने में सक्षम रहे हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

ईश्वर की पूजा का तात्पर्य ईश्वर के गुणों का चिन्तन करना उसके उपकारों को स्वीकार करके, उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना तथा उसके गुणों को जीवन में धारण करना, उसकी पूजा है। यदि ईश्वर जीवों की रक्षा करता है, दुःखों को दूर करता है, सुख देता है तो हमें भी दूसरों की रक्षा करनी चाहिए, दूसरों को दुःख नहीं देना चाहिए, दूसरो को सुख देना, ईश्वर की पूजा है। ईश्वर की पूजा के नाम पर मनुष्य ने अपने गुण ईश्वर में डाल दिये। भूख लगने पर हम भोजन करते हैं तो भगवान को भोग लगाना उसे स्नान कराना, उसे उठाने के लिए घण्टी बजाना, सर्दी में भगवान को गरम कपड़े पहनाना आदि कार्य ईश्वर की पूजा के नाम पर हो रहे थे, आज भी हो रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने पूजा का यथार्थ स्वरूप समझाया ईश्वर की उपासना करने वाले को अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि गुणों को धारण करना चाहिए जिससे वह परमात्मा को प्राप्त कर सके अर्थात् चोर भगवान का भक्त नहीं हो सकता और जो भगवान का भक्त होगा वह चोर नहीं हो सकता तभी तो ईश्वर के उपासक महाराजा अश्वपति ने घोषणा की थी कि मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है। न मे स्तेनो जनपदे ..... (उप.)।

विगत कई वर्षों से मिथ्या भ्रान्ति फैला दी गई थी कि परमात्मा पाप, क्षमा कर देता है। सैकड़ों मील दूर बैठे-बैठे व्यक्ति दो बार गंगा-गंगा शब्द बोल दे तो परमात्मा उसके सारे पाप क्षमा कर देता है और वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

गंगा गंगेति यो ब्रूज्यात् योजनानां शतैरपि।
मुंचते तर्व पापेभ्यो विष्णु लोकं स गच्छति।।

प्रातःकाल शिव के मन्दिर में जाकर शिव की मूर्ति के दर्शन कर लो तो रात्रि के किये हुए पाप नष्ट हो जायेंगे और सायंकाल दर्शन करने से दिनभर के पाप नष्ट हो जायेंगे। प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति। इसी प्रकार ईसाई, मुसलमान आदि भी मानते हैं कि ईश्वर किये हुए पापों को माफ कर देता है। क्षमावाद के भयानक प्रलोभन के कारण मनुष्य का जीवन पतित और भ्रष्ट हो गया, तब किसी ने व्यंग्य में ठीक ही कहा था कि 'जिस खुदा के ऐसे बन्दे वह खुदा कोई अच्छा खुदा नहीं।' महर्षि दयानन्द ने क्षमावाद पर करारा प्रहार करते हुए लिखा कि परमात्मा पाप क्षमा नहीं करता, मनुष्य जो भी शुभ-अशुभ कर्म करता है उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। कर्मफल के सिद्धान्त को व्यक्ति स्वीकार कर ले तो अनेक पाप कर्मों से बच जाता है उसका जीवन श्रेष्ठ बन जाता है।

स्वामी दयानंद के अनुसार वैदिक धर्म में परब्रह्म परमेश्वर की उपासना का विधान है परन्तु पुराणपंथियों ने उसके स्थान पर अनेकेश्वरवाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, देवी-देवताओं की पूजा और यहाँ तक कि उपदेवताओं तक की पूजा प्रचलित करके अपना स्वार्थ सिद्ध किया। वेद समर्थित समाज में चार वर्णों की व्याख्या है, और यह व्यवस्था कर्म के आधार पर थी। इनमें ऊँच-नीच तथा छुआछूत का अन्तर नहीं था। दयानंद जी के अनुसार व्यक्ति अपने विकास में समाज की सहायता पाता है, अतः उसे समाज को चुकाना भी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति पर स्वस्थ वंश परम्परा चलाने, ज्ञान की परम्परा को आगे बढ़ाने, प्राणिमात्र की सेवा और सहायता करने तथा जीवन को अध्यात्म की ओर अग्रसर करने का दायित्व है। इन विभिन्न दायित्वों को पूरा किए बिना कोई व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता।

वेद मन्त्रों को बोलकर यज्ञों में पशु हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा था। इसका विरोध करने पर पाखण्डी लोग 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' कह कर यज्ञ में पशुबलि को उचित बताते थे, पशुबलि के विरोध स्वरूप जैन और बौद्ध मतों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ, महर्षि दयानन्द ने वेद के प्रमाण 'पशून - पाहि गां मा हिंसा अध्वर और अध्वर्यु आदि देकर यज्ञ म ं पशु हिंसा को समाप्त करने का श्लाघनीय कार्य किया।

अगले पृष्ठ पर जारी

पिछले पृष्ठ का शेष

महर्षि दयानन्द का दिव्य सन्देश

जिन वेद मन्त्रों का मध्यकालीन वेद भाष्यकारों ने हिंसा परक अर्थ किया था जिससे धार्मिक जन वेदों से दूर हो रहे थे उनका तर्क और प्रमाणों से खण्डन करके महर्षि दयानन्द ने वेद मन्त्रों का यथार्थ अर्थ किया तथा वेदों की ओर लौटने का आह्वान किया। जिसके परिणाम स्वरूप विगत दो सौ वर्षों से वेदों की व्याख्या, वेदों पर प्रवचन, वेद पाठ, वेदाध्ययन और वेद सम्मेलनों का आयोजन विस्तृत रूप से हो रहे हैं, 'स्त्री शूद्रो ना धीयताम्' कहकर स्त्री तथा वर्ग विशेष दलित आदि को वेद पढ़ने से रोका जा रहा था। ऋषि दयानन्द ने याद दिलाया कि जैसे सूर्य का प्रकाश सबको प्राप्त है वैसे ही वेद सब पढ़ और सुन सकते हैं।

महर्षि दयानन्द के लिए आर्य शब्द किसी साम्प्रदायिक धर्म का पर्याय कभी नहीं बना। यह उनके द्वारा आर्य समाज की स्थापना से भी सिद्ध है। आर्य समाज कभी किसी धर्म का रूप नहीं ले सका, यह उनकी इच्छा और विश्वास का ही परिणाम है। स्वामी दयानंद ने समाज में स्त्री के सम्मान पर विशेष ध्यान दिया था। वे पुरुष के साथ नारी की समानता का पूर्ण समर्थन करते थे। भारतीय समाज की हीन अवस्था का एक महत्वपूर्ण कारण उनके अनुसार यह भी है कि इस समाज में नारी का सम्मानपूर्ण स्थान नहीं रह गया था। वे नारी और पुरूषों के अधिकारों की पूर्ण समानता स्वीकार करते हैं, स्त्रियों में अशिक्षा, बाल-विवाह, विधवा प्रथा तथा वेश्यावृत्ति आदि अनेक समस्याओं को दयानंद ने उठाया और उनका उचित समाधान प्रस्तुत किया था। जिस साहस और दृढ़ता के साथ उन्होंने इन समस्याओं का समाधान समाज के सामने रखा था, उससे उनके व्यक्तित्व की क्रांतिकारिता परिलक्षित होती है।

स्वामी दयानंद ने भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन के मूल्यों के पारस्परिक अंतः सम्बन्ध को जितनी स्पष्टता के साथ प्रतिपादित और विवेचित किया है, वह विश्व के किसी अन्य महापुरुष या दार्शनिक की विचारधारा में नहीं है।

स्वामी दयानंद आधुनिक युग के महान ऋषि एवं मन्त्र द्रष्टा थे। उनमें जितनी गहरी यथार्थ की पकड़ थी, उतनी ही व्यापक इतिहास और परम्परा को ग्रहण करने की क्षमता भी थी। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने समाज की प्रक्रिया को समझा, उसके भविष्य की संभावनाओं को पहचाना और फिर उसको एक स्वस्थ, सक्रमाण और सृजनशील समाज-रचना की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न किया।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श जीवन के अनुकरण की प्रेरणा महर्षि दयानन्द जी ने दी। आज जगह-जगह राम का जयघोष किया जाता है, रामायण का अखण्ड पाठ होता है। भव्य राम मंदिर के निर्माण की योजना बन रही है, घर-घर में राम की पूजा होती है और यहाँ पर कोई पिता पुत्र के व्यवहार से दुःखी है, भाई-भाई का दुश्मन बना हुआ है, छोटी बातों को लेकर एक-दूसरे की हत्या कर रहे हैं तो राम जैसा आदर्श पितृ भक्त पुत्र जो पिता की आज्ञा से अपने जीवन के 14 वर्ष जंगल में व्यतीत कर देता हो, अपने भाई को इतना प्रेम करता हो कि वैद्य से कहता हो कि घाव देखना हो तो लक्ष्मण का देख लो और दर्द (पीड़ा) देखना हो तो मेरे हृदय को टटोल कर देख लो। तं तु दशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः। उस देश में राम की पूजा कहाँ हो रही है। आर्य समाज और ऋषि दयानन्द का ही मानना है कि राम के चित्र की नहीं अपितु राम के चरित्र की पूजा करो, उनके आदर्शों का अनुकरण करो जिससे घर-घर में राम जैसे पितृ भक्त पुत्र हों, राम और भरत जैसा भाईयों में प्यार हो।

अपि स्वर्णमयी लंका न में लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्चः स्वर्गादपि गरीयसी।।
यह आदर्श देश के राजनेताओं का हो।

कृष्ण और सुदामा की मित्रता की चर्चा कृष्ण भक्तों के बीच में होती है और मित्र अपने मित्र को धोखा दे रहा हो तो कृष्ण की पूजा कहाँ हो रही है। महाभारत काल में भीष्म पितामह, युधिष्ठिर से कहते हैं इस समय धरती पर तप, त्याग, सदाचार वेदों का विद्वान् राजनीतिज्ञ, ईश्वर भक्तादि गुणों से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कृष्ण के अतिरिक्त कोई नहीं है। .... न हि केशवाद् ऋते। महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि देखो! श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है, उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। ..... जिस कृष्ण ने रूक्मणी के साथ विवाह करके 12 वर्ष तक घोर तपस्या ब्रह्मचर्य का पालन किया और उसके पश्चात् 'प्रद्युम्न' जैसा पुत्र प्राप्त किया हो। ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्या द्वादश वर्षकम्...। उस कृष्ण को जिन ग्रन्थों में चोर शिरोमणि दुराचारियों का नेता, चोर जार शिखामणि (गीता गोविन्द) कहा गया हो, जिस राधा का नाम महाभारत, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण व मूल भागवत में कहीं नहीं है, उस राधा को कृष्ण के साथ जोड़ दिया, रासलीलाओं में कृष्ण को भोगी विलासी व अश्लील क्रियाएं करने वाला दिखाया जाता है। जबकि इन बातों का ऋषि दयानन्द ने विरोध किया है। कर्मयोग के उपदेष्टा राजनीति के ज्ञाता, आदर्श चरित्र के धनी श्रीकृष्ण का आर्य समाज सदा जय-जयकार करता है। राधा को कृष्ण के साथ ऐसा जोड़ा गया है कि राधेश्याम, राधा कृष्णादि कहकर रूक्मणी को लुप्त कर दिया। कुछ वर्ष पहले लिव-इन-रिलेशनशिप के एक मुकदमें में सुप्रीम कोर्ट के जजों ने फैसला सुनाते हुए कहा था कि यदि राधा बिना विवाह के कृष्ण के साथ रह सकती है, तो खुशबु (दक्षिण भारत की एक्ट्रेस) भी बिना विवाह के किसी पुरुष के साथ रहती है तो इसमें गलत क्या है? इसका दुष्प्रभाव यह हुआ कि अनेक युवक-युवतियाँ बिना विवाह के साथ-साथ रहने लगे और 'लिव-इन-रिलेशनशिप' जैसी घृणित परम्परा इस देश में चल पड़ी। उत्तर प्रदेश के आई. जी. स्तर के पुलिस अधिकारी श्री पाण्डया ने औरतों के कपड़े पहने, हाथों में चूड़ियाँ पहन ली और नाचते हुए कहने लगा कि मैं कृष्ण की राधा हूँ, पुलिस विभाग ने ऐसा करने से उसे मना किया किन्तु वह नहीं माना, अन्ततोगत्वा उसे नौकरी से निकाल दिया गया। यह दुष्परिणाम है कृष्ण के अश्लील व निन्दनीय चरित्र को तथाकथित भागवत के कथाकारों द्वारा प्रस्तुत करने के कारण। यह चिन्ता है तो आर्य समाज व ऋषि दयानन्द को है। पूजा करनी है तो महाभारत के कृष्ण की करो जिसने गीता के माध्यम से निष्काम कर्म (कर्मयोग) का उपदेश दिया है और जिसका जीवन निष्कलंक एवं पवित्र है।

पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा, भैरवादि देवी-देवताओं का जीवन कलंकित कर रखा है, किसी को भांग पीने वाला, धतुरा खाने वाला, शराब पीने वाला, किसी को मांस खाने वाला आदि बतला रखा है। शराब पीना, मांस खाना, दुराचार करने वाला देवी-देवता क्या मनुष्य भी कहलाने योग्य हैं, जो देवी-देवता हैं वह मद्य, मांस का सेवन नहीं करता है। जो सेवन करता है वह देवी-देवता नहीं हो सकता यह आर्य समाज का मानना है। आर्य समाज देवी-देवताओं का नहीं अपितु इन पर लगाये गये मिथ्या आरोपों का खण्डन करता है।

प्रत्येक गृहस्थ के लिए पंच महायज्ञ करना अनिवार्य दैनिक कर्म है। परमात्मा के उपकारों का स्मरण करके उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना, उसके गुणों - दया, परोपकार, न्यायादि को जीवन में धारण करने के लिए ब्रह्म यज्ञ करना, प्राकृतिक पर्यावरण को ठीक रखने के लिए देवयज्ञ, माता-पिता की सेवा हेतु पितृयज्ञ आने वाले विद्वानों की सेवा हेतु अतिथि यज्ञ तथा अन्य प्राणियों की रक्षा हेतु बलिवैश्व देवयज्ञ करना चाहिए।

महर्षि दयानन्द विश्व के एक मात्र दार्शनिक थे जिन्होंने त्रैतवाद के वैदिक सिद्धान्त को स्थापित किया। ईश्वर, जीव, प्रकृति की अलग-अलग सत्ता को स्वीकारा तथा इन्हें नित्य व अनादि माना। ईश्वर को सब सत्य विद्याओं तथा जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल घोषित किया। स्वामी जी ने कहा कि प्रकृति सत है, जीव सत व चित है तथा ईश्वर सत, चित व आनन्द रूपी गुणों से युक्त है। महर्षि दयानन्द कर्मफल व पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते थे। सृष्टि उत्पत्ति के सम्बन्ध में वे वेद आधारित सिद्धान्त को स्वीकारते थे जिसके अनुसार प्रारम्भ में अमैथुनी तथा बाद में मैथुनी सृष्टि होती है। स्वामी जी फलित ज्योतिष के बदले गणित ज्योतिष को वेदानुकूल मानते थे। धर्म के क्षेत्र में प्रचलित परम्पराओं यथा मृतक श्राद्ध व तर्पण, जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, गण्डे ताबीज, झाड़-फूंक आदि को अन्धविश्वास व पाखण्ड मानते थे तथा अवैज्ञानिक एवं वेद विरुद्ध घोषित करते थे।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में वे वर्ण आश्रम व्यवस्था व व्यक्ति निर्माण के लिए सोलह संस्कारों को मान्यता देते थे। महर्षि आर्ष शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे इसके लिए उन्होंने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर बल दिया। समाज में सामाजिक समरसता स्थापित करने के लिए अस्पृश्यता एवं शिक्षा तथा समानता लाना आवश्यक है। ऐसी उनकी घोषणा थी। उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है। चाहे कोई राजकुमार हो या राजकुमारी अथवा दरिद्र की सन्तान हो, सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसनादि मिलने चाहिए। यह राज नियम एवं जाति नियम होना चाहिए कि प्रत्येक बालक विद्यालय में जाये। स्वामी जी ने अनिवार्य शिक्षा, समान शिक्षा व निःशुल्क शिक्षा की क्रान्तिकारी योजना दी थी। वे वेद को मानव मात्र के विकास के लिए ज्ञान मानते थे। वेद में न तो इतिहास है, न ही भूगोल तथा न ही किसी मत, सम्प्रदाय, देश, जाति या नस्ल विशेष के लिए यह ज्ञान है। बल्कि यह वैश्विक ज्ञान है जिसको मानने से पूरे विश्व में वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा मूर्तरूप ले सकती है।

स्वामी जी चले गये परन्तु भारत के सांस्कृतिक और राष्ट्रीय नवजागरण में उनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनकी मान्यताओं और सिद्धान्तों ने हीन भाव से ग्रस्त भारतीयों में अपूर्व उत्साह का संचार किया। अन्धविश्वास और कुरीतियों के जाल से मुक्त होकर उन्होंने जिस प्रगतिशील मार्ग को अपनाया था, जिस वैचारिक क्रांति को जन्म दिया था वही मार्ग आज हमें वैज्ञानिक युग में ले आया है।

महर्षि का हम जीवन भर सम्मान करेंगे

— दीपक कुमार छिल्लर

भौतिक आडम्बरों के कुचक्र में अब हम नहीं फसेंगे,
पाखण्ड एवं पाखण्डियों का खंडन करने से अब हम नहीं डरेंगे।
सरलतम जीवन जीने के लिए वैदिक शिक्षाओं का अब हम पालन करेंगे,
वैदिक आचरण को अपने व्यक्तित्व में अपनाकर हम निरन्तर निखरेंगे।
वेदों में बतलाई गई वैदिक शिक्षा पाकर हम भव–सागर को पार कर जायेंगे,
आज्ञाकारिता, सहनशीलता, व्यवहारिकता, सरल स्वभाव का गुण अपनायेंगे।
स्वयं के जीवन में अपनाकर वैदिक नियमों पर चलकर हम दिखायेंगे,
वैदिक शिक्षा को अपनाकर हम अपना जीवन सफल बनायेंगे।
वैदिक धर्म से वैदिक शिक्षा पाकर महर्षि हम आपका गुणगान करेंगे,
महर्षि हम जीवन भरा आपका सम्मान करेंगे, आपको प्रणाम करेंगे।।1।।

है चारों तरफ घनघोर अंधेरा पाखण्डियों का लगा है डेरा,
भटक रहे हैं पाखण्ड के चक्कर में न जाने कब होगा सवेरा।
जीवन अधूरा है वैदिक शिक्षाओं के बिना, हमें नित्य प्रति अपनाना होगा,
सर्वशक्तिमान ईश्वर को पाने के लिए पथ प्रदर्शक के नियमों पर चलना होगा।
वर्तमान समाज सच्चे ईश्वर को भूलाकर, अन्धविश्वास के चक्कर में फंसा है,
सच्चे ईश्वर की खोज न करके, दर–दर भटक रहा है।
पाखण्ड एवं अन्धविश्वास से बचकर, सच्चे ईश्वर का उपासक बनना है,
ईश्वर सर्वज्ञ है, दुःख में खुद को अकेला पाकर कभी उदास नहीं होना है।
शरीर हमारा नश्वर है न कभी हम इसका अभिमान करें,
हम जीवन पर्यन्त महर्षि द्वारा दिखाये मार्ग का अनुसरण करेंगे।।2।।

— म. नं.–1022, ग्राम सभा कालोनी, सरदार पटेल, झील के पास, पूठकलां, दिल्ली–110086, मो.:–9990422051

श्रद्धा – ईर्ष्या – द्वेष

– प्रो0 रमेश चन्द्र शास्त्री, वैदिक प्रवक्ता ''आर्यरत्न''

श्रद्धा दो प्रकार की होती है, अन्ध श्रद्धा और सत्य श्रद्धा। जहाँ आधार–भूत सत्य का अभाव होता है तथा किसी महती कृपा मिलने की आशा में, हम जब किसी व्यक्ति विशेष में पूर्ण विश्वास व्यक्त करते हैं तो वह अन्ध श्रद्धा कहाती है। यह आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति विद्वान् व सदाचारी भी हो, पर उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसके अनुयायियों द्वारा होनी चाहिये, चाहे उसके अनुयायी मूर्ख ही क्यों न हैं। अन्ध श्रद्धा शीघ्र स्थापित होने वाली विचारधारा का नाम है और जब सत्य का ज्ञान होता है तब यह समाप्त हो जाती है। इसको योगदर्शन में मिथ्या ज्ञान कहा है **''मिथ्याज्ञानमतद्रुप प्रतिष्ठितम्''।**

स्वाध्याय तथा सत्संग से जब यह मिथ्या ज्ञान समाप्त हो जाता है तब श्रद्धा का आविर्भाव होता है या स्वाध्याय, सत्संग द्वारा आप्त पुरुषों की तथा परमात्मा की कृपा होती है तब उपासक के अन्दर, भक्त के हृदय में प्रथम बार में ही श्रद्धा का अवतरण होता है और वह मुंशीराम से महात्मा मुंशीराम तथा महात्मा मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बन कर विश्व कल्याण के लिये अपने जीवन को अर्पित कर देता है।

लेकिन कुछ व्यक्तियों के हृदय राग द्वेष ईर्ष्या आदि अवगुणों से इतने कलुषित होते हैं कि उन व्यक्तियों को श्रद्धानन्द जैसे महान् तपस्वी, त्यागी, स्वतन्त्रता आन्दोलन को अपने यौवन पर पहुँचाने वाले, गुरुकुलों की परस्परा को पल्लवित करने वाले पसन्द नहीं आते। इसीलिये उस समय हिन्दू और मुसलमान आदि में जो दुष्ट व्यक्ति थे उन्होंने ईर्ष्यावश स्वामी श्रद्धानन्द का प्रबलतम विरोध किया और उसका परिणाम श्रद्धानन्द बलिदान के रूप में संसार के सामने आया और हमारा एक महापुरुष हम से सदा के लिये अलग हो गया।

द्वेष का सूक्ष्म रूप ईर्ष्या है। ईर्ष्या मन में रहती है। जब यह ईर्ष्या उग्ररुप में होती है तब इसी को द्वेष कहते हैं और ईर्ष्या द्वेष की कालिमा से कलुषित व्यक्ति ही दुष्ट कहाता है। इन दुष्टों को **ऋग्वेद १-६६-५** में महर्षि दयानन्द ने शत्रु माना हैं **''दुष्टान शत्रुजनान्''। ''दुष्टः हिंसायाम्''** इसीलिये जितने भी हिंसक प्रवृत्ति के मनुष्य हैं वे सब दुष्ट माने जाते हैं। यह हिंसा मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे दुष्टों का प्रचलन हो चुका है। मलिन हृदय वाले भी दुष्ट होते हैं **दुस्** (**दिवादि०, परस्मै०**) दुष्यति प्रेरणा अर्थ में यही दूषयति बनता है। ये ही लोग दूसरों को भी मलिन करते हैं, भ्रष्ट करते हैं, बिगाड़ते हैं। घृणा भाव इन दुष्टों में कूट–कूट कर भरा होता है। **दुष् वैकृत्ये** (**दिवादि०, परस्मै० अ०**) से भी इस शब्द की निषपत्ति मानी जाती है। यह वर्ग समाज में अनेक प्रकार की विकृति फैलाता है। इन्हीं विकारों के फैलते–फैलते एक दिन मानव समाज ही नष्ट हो जाता है और ऐसे मनुष्य **''मनुष्यरुपेण मृगाश्चरन्ति''** पशु तथा पशुओं से भी ज्यादा समाज के लिये हानिकारक होते हैं। इसीलिये अथर्ववेद ८–४–२२ में ''उलूकयातुं शुशुलूक यातुं जहिश्व यातुं उत्कोकयातुम्। सुपर्ण यातुं उत् गृध यातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।। मन्त्र के द्वारा परमात्मा से तथा राजा से प्रार्थना की गई कि इन पशु प्रवृत्ति वाले दुष्टों से हमारी रक्षा करो और इनको नष्ट कर दो।

इन दुष्ट, राग द्वेष ईर्ष्या सम्पन्न व्यक्तियों को उल्लू की तरह दिन में भी दिखाई नहीं देता। साधु सन्त महात्माओं का ज्ञान रूपी प्रकाश इनकी आँखों को अच्छा नही लगता और ये अन्धेरे में साधु सन्तों पर बार हमला करते हैं। अर्थात् पीछे से हमला करते हैं। बात का बतंगड़ बना कर उनको बदनाम करते हैं। इन दुष्टों की प्रवृत्ति भेड़िये जैसी बन जाती है, इन का पेट भी वृकोदर (भेड़िये) के सामान ज्यादा खाने वाला हो जाता है, इनका परिश्रम की कमाई से पेट नहीं भरता अपितु तरह–तरह के आयोजन, उत्सव, सम्मेलन, महासम्मेलन आदि के नाम पर करोड़ों डकार जाते हैं। बार–बार पदासीन होने पर भी इनकी भूख शान्त नहीं होती।

इन दुष्टों का स्वभाव कुत्तों जैसा होता है। जैसे कुत्ते स्वभावतः अपनी जाति से द्वेष करते हैं, एक ग्रुप के कुत्तों को दूसरे ग्रुप के कुत्ते अच्छे नहीं लगते और वे उनको देखकर भौंकना प्रारम्भ कर देते हैं, आपस में छीना–झपटी करते हैं। इन श्व–स्वभाव वाले मनुष्यों की भी यही दशा होती है। इस प्रवृत्ति के पीछे एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक तथ्य है और वह यह है। दर्शकों न कई बार यह देखा होगा कि कुत्ता सोते–सोते कई बार भोंकना शुरू कर देता है तब उस एक कुत्ते की भौंकने की आवाज सुनकर उसके (उस ग्रुप के) साथी भी भौंकना शुरू कर देते है। और थोड़ी देर बाद भौंक–भौंक कर चुप हो जाते हैं। मनोविज्ञान यह है कि उस कुत्ते ने कभी कोई शेर अपने मालिक के पर्यटन के समय देखा था। अब मालिक ने किसी कारण से उस कुत्ते को छोड़ दिया, घर से निकाल दिया। तो ऐसे कुत्ते को जब कभी सोते समय स्वप्न में वह शेर दिखाई देगा तो वह स्वप्न को वास्तविक सत्य मानकर और स्वप्निल शेर को वास्तव में शेर मानकर भौंकना शुरू कर देगा। उसकी देखा–देखी अन्य कुत्ते भी भौंकना शुरू कर देते हैं। ऐसे ही किसी साधु सन्त के कार्य–प्रभाव से अपने स्वार्थो को खतरे में पड़ा जानकर यह दुष्ट कुत्ता जब भौंकता है तब इस ग्रुप के अन्य कुत्ते भी भौंकना शुरू कर देते है और सारे मुहल्ले की नींद खराब कर देते है, उसके अनुयायी अन्य कुत्तों को यह पता नहीं कि हमारा लीडर कुत्ता क्यों भौंक रहा है बस उनका काम तो अपने लीडर कुत्ते को भौंकता देखकर स्वयम् को भी भौंकने की ज्वाला में तप्त करना मात्र है।

आजकल ऐसे श्व–स्वभाव युक्त मनुष्यों की कमी नहीं है। जब एक कुत्ते ने यह कहा कि फलां आदमी साधुसन्त ने यह कहा वह कहा तो दूसरे कुत्ते उस साधु सन्त के कहे को बिना देखे बिना पड़े सोचे विचारे भौंकना शुरू कर देंगे। (कोक) चिड़ा की तरह ये कामी भी बहुत होते हैं, इनकी कामनाएँ अपार होती हैं। गरुड़ की तरह ये अभिमानी ही नहीं दुरभिमानी भी होते हैं। इन मूर्ख दुष्टों को यह दुरभिमान होता है कि इस पद के लायक तो मैं था यह दूसरा साधुसन्त कहाँ से आ गया। इसीलिये इतना भौंको कि दूसरे यह समझें कि यह हमारे विचारों का नहीं है, इसके विचार दूसरे प्रकार के हैं। ये विधर्मी है धार्मिक तो केवल हम हैं। और अन्त में जब तक यह ईर्ष्या द्वेष की भावना हमारे अन्दर विद्यमान रहेगी हम एक श्रद्धानन्द नहीं अनेक श्रद्धानन्दों को बाहर करने का प्रयत्न करते रहेंगे। वेद के इस मन्त्र के आधार पर हम जीवन के अन्दर तक गहराई तक समझें और अपने स्वभाव, अपने संस्कारों को शुद्ध पवित्र बनायें वरना परमात्मा हमें पुनर्जन्म कुत्ते आदि जातियों में कर्मफलानुसार अवश्य भेजेगा।

–१८१६ सैक्टर-२८, फरीदाबाद, हरियाणा

व्रत तथा व्रत पालन

– दानसिंह प्रजापति

वेदों का पठन–पाठन, दान–पुण्य साधन चतुष्टय (विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति, मुमुक्षत्व) अनन्य भक्ति आदि प्रभु के कृपा पात्र बनने के साधन हैं। इन साधनों की भाँति व्रत भी एक महत्वपूर्ण साधन है। वेद विहित कर्त्तव्य कर्म करने का दृढ़ निश्चय व्रत कहलाता है। सत्य निष्ठा तथा शुभ क्रियाओं से कार्य सम्पादन को ही व्रत पालन कहते हैं। संसार के प्रत्येक श्रेष्ठ मानव का जीवन व्रती जीवन होता है। अद्य पर्यन्त जितने भी महामानव यथा–राजा हरिश्चन्द्र, श्रीराम, महात्मा कृष्ण के बारे में कहा जाता है कि–

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ व्रत हरिश्चन्द्र कौ टरै न सत्य विचार।।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम तो व्रत के पर्याय रहे हैं। अनेक बार उन्होंने अपने व्रतों को उद्घोषित किया और उन्हें कर दिखाया। यथा–हरिहऊँ सकला भूमि गरू आई।

रघुवंशिन्ह कर सहज सुभाऊ।
जनु कुपंथ पग धरहि न काहू।।
निश्चर हीन करहुँ महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाहि जाहि सुख दीन्ह।।

सखा नीति तुम नीक विचारी। मम प्रण शरणागत भय हारी। आदि आदि।

वेदों में व्रत की महिमा का विस्तृत वर्णन अनेक मंत्रों में विद्यमान है। वेद मानव को व्रती बनने की आज्ञा देते हैं। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के मंत्र ५ में व्रत का इस प्रकार वर्णन है– अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।। अर्थात्– हे (व्रत पते) सब सत्य स्वरूप कर्मो के पालन करने हारे और (अग्ने सत्य एवं सृष्टि क्रम आदि का उपदेश करने हारे परमेश्वर ((अनृतात्) झूँठ से विपरीत (सत्यम्) वेद ज्ञान, श्रेष्ठ विचार व विद्वानों का संग आदि (व्रत) सत्य मानना, सत्कर्म करना, सत्य बोलना आदि की दृढ़ता से (उपैमि) अनुष्ठान करने सम्बन्धी नियमों के पालन की इच्छा करता हूँ। आप (मैं) मेरे (तत्) उस सत्य व्रत को (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये, जिससे कि (अहं) मैं उस सत्य व्रत के पालन करने में (संकेयं) समर्थ होऊँ। मैं (इदम्) इस सत्य व्रत को ठीक प्रकार से (चरिष्यामि) अपने जीवन में पालन करूंगा।

इस वेद मंत्र में कहा है कि जैसे सत्य व्रतों के पालन से परमेश्वर व्रतपति है, वैसे हम लोग भी उस प्रभु की कृपा से और अपने पुरुषार्थ से सत्यव्रतों के पालन करने वाले हों। अतः स्पष्ट है कि व्रतों का ठीक–ठीक परिपालन प्रभु की साझेदारी के बिना कठिन ही नहीं वरन् असंभव है।

बहुधा लोग किसी पौराणिक या कल्पित देवी–देवता की प्रसन्नता के हितार्थ अमुकवार या अमुक तिथि को अन्न के परित्याग को 'व्रत, मानते हैं, और उन्हें धारण करते हैं। अनेक व्यक्ति ऐसे भी हैं जो खड़े रहकर या एक हाथ ऊपर को रख कर वर्ष–१० वर्ष अथवा जीवन भर अपना जीवन जीने को ही व्रत मानते हैं और ऐसा करते भी हैं। यह कैसी विडम्बना है कि वेद–शास्त्रों के उपदेशों की अवज्ञा कर अपनी मनमानी करते हैं तथा सामान्य जनों को प्रभावित करके अपने समर्थक एवं अनुयायी बनाते हैं। यह सब वैदिक व्रत की मौलिक भावनाओं के बिल्कुल विपरीत है। ऋषि पत्नि अहिल्या जी ने सीता जी के माध्यम से स्त्रियों के कल्याण हेतु क्या बुढ़िया पुराण की कहानियों के व्रत रखने का उपदेश किया था? आज जो समाज में व्रत माने या रखे जाते हैं ऐसा कोई व्रत उपदेश उन्होंने नहीं दिया। यह सब उस महान् महिला के लिये मिथ्या मान्यता थी। उन्होंने सीता को वैदिक व्रत धारण करने का उपदेश दिया था। यथा

एक ही धर्म एक व्रत नैमा। काय, वचन, मन, पति पद प्रैमा।।
विनुश्रम नारि परम् गति लहईं। पति व्रत धर्म, छाँड़ि छल गहईं।।

अर्थात्– तन, मन और वचन से पति के चरणों में प्रेम करना ही एक सत्य व्रत है और यही नारी का धर्म है। अभिप्राय यह है कि शरीर से पति की सेवा तथा आज्ञा पालन करना, मन में सद्भावना और वाणी से मधुर बोलना। जो स्त्री इस पति व्रत धर्म का छल छोड़कर सत्य निष्ठा से पालन करती है वह बिना परिश्रम के परम् गति को प्राप्त होती है। पति ने जिन सत्य व्रतों को धारण किया है उन व्रतों की अनुवर्ती बनने की शक्ति–भक्ति का नाम पतिव्रता है।

श्री मद्भगवग्दीता में भी सत्य व्रत का ही उल्लेख है। यथा– ''यतयः संशित व्रताः (४–२८), जिन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि तीक्ष्ण व्रत पालन के नियम भलीभाँति धारण कर रखे हों, ऐसे यत्नशील पुरुषों को ''संशित व्रताः कहते है। योगदर्शन शास्त्र के अष्टांग योग में 'यम, प्रथम अंग है। उपरोक्त–अहिंसादि ५ यम के भाग है। महर्षि पातंजलि ने यम के इन ५ पाँच भागों के व्रतों को ''महाव्रत,, की संज्ञा दी है। यथा जाति देश काल सम यानव छिन्नाः सार्व भौम महाव्रतम् (सूत्र ८२) अर्थात् अहिंसादि यम, जाति, देश, काल के बन्धन रहित हैं तथा ये सार्वभौम महा व्रत है।

व्रतों के पालन कर्त्ता के समक्ष अनेक विघ्न–बाधाएँ आती हैं जो व्रती के कर्त्तव्य मार्ग को बाधित करतीं हैं किन्तु दृढ़ निश्चयी साधक चाहे कितने ही द्वन्द्व प्रलोभन, कष्टादि क्यों न हों, वे अपने कर्त्तव्य मार्ग पर डटे रहते हैं। ऐसे व्रती पुरुष को गीता में ''दृढ़व्रताः'' कहा गया है। एक कवि का दृढव्रताः, व्रती के बारे में कथन है–

कवहुँ भूमि कठोर पै राति कटै, कब हूँ परियंक बिछावत है।
कवहूँ दिन शाक को खाय कटै, कवहूँ पकवान उड़ावत है।।
कवहूँ गुदड़ी सों ही देह ढके, कवहूँ पट रेशम पावत है।
'व्रतशील, सदा निज लक्ष्य लखें, दुःख द्वन्द्व उन्हें न सतावत है।।

अतः हमें चाहिये कि हम व्रत के वास्तविक स्वरूप को समझें और मानें। वैदिक व्रत अर्थात् सत्य व्रत ही धारण और पालन करने योग्य हैं। व्रतों की सफलता के लिये प्रभु को अपना सहयोगी मित्र बनाना अत्यन्त आवश्यक है। अपने प्रत्येक कर्म को प्रभु से जोड़ कर करने का यदि हमारा स्वभाव बन जाये तो– असफलता, अवनति कभी पास फटक भी नही सकतीं। एक शायर का कथन है– मैं नहीं कहता कित दुनिया से जुदा हो। किन्तु हर काम में बस यादे खुदा हो।। अपनी वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय उन्नति के निमित्त सहज साध्य व्रतों को ही धारण करें तथा तन की दृढ़ता से, मन की निर्मलता से व बुद्धि की तीव्रता से पालन करें।

– पुराना बाजार बाड़ी, जिला–धौलपुर (राज.) (05647)- 224295

पंजीयन संख्या (R.N.I. No.)- DELMUL/2005/15488
डाक पंजीकरण संख्या DL(c)-01/1213/2024

सोशल मीडिया के माध्यम से स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ें

आर्य समाज के त्यागी, तपस्वी एवं तेजस्वी संन्यासी स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ने के लिए इस लिंक पर क्लिक करें :- ***www.facebook.com/SwamiAryavesh*** व फेसबुक पेज को लाइक करें तथा अन्य मित्रों को भी प्रेरित करें।

ई-मेल : aryavesh@gmail.com
दूरभाष : 011-23274771, 42415359

प्रतिष्ठा में :–

अवितरण की दशा में लौटाएँ –
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
"दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

श्रावणी पर्व (वेद प्रचार सप्ताह) हर्षोल्लास के साथ समारोह पूर्वक मनायें सभी आर्य समाजें राष्ट्रभृत यज्ञों का भव्य आयोजन करें

श्रावणी पर्व के अवसर पर सभी आर्यजन आने वाले वर्ष 2025 में आर्य समाज की 150वीं जयन्ती भव्यता से मनाने का संकल्प लें

– स्वामी आर्यवेश

जीवन निर्माण में स्वाध्याय का महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक साहित्य स्वाध्याय की महिमा का बखान करते नहीं थकते। चारो आश्रमों में स्वाध्याय करने का विधान है। वेद का प्रचार तथा वैदिक मूल्यों का स्थापन आर्य समाज की गतिविधियों में प्राथमिक महत्व रखते हैं। इस वर्ष 19 अगस्त, 2024 को श्रावणी उपाकर्म (रक्षा बन्धन) तथा श्री कृष्ण जन्माष्टमी 26 अगस्त, 2024 को है। दोनों पर्वों के बीच का सप्ताह वेद प्रचार सप्ताह के रूप में मनाया जाता है।

श्रावणी पर्व के अवसर पर युवा हृदय सम्राट आर्य संन्यासी स्वामी आर्यवेश जी ने कहा कि वेद प्रचार सप्ताह को केवल पारम्परिक रूप में औपचारिकता पूर्ति हेतु मनाने से कोई विशेष लाभ होने वाला नहीं है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम सच्चाई व ईमानदारी से वेद प्रचार के कार्यों को सर्वोपरि मानकर उसके प्रचार-प्रसार में समय लगायें। यदि वेद प्रचार सप्ताह को उत्साह पूर्वक अधिकाधिक लोगों को सम्मिलित करके मनायें तथा कुछ विशेष अनुकरणीय कार्य करें तो हम आम जनमानस को प्रभावित भी कर सकते हैं तथा वेद ज्ञान को घर-घर पहुंचा सकते हैं। श्रावणी वेद प्रचार सप्ताह के अन्तर्गत सभी आर्यजनों को यह संकल्प दिलवाया जाये कि आने वाले वर्ष 2025 में आर्य समाज की 150वीं जयन्ती को भव्यता के साथ मनाने के लिए अभी से तैयारी करना प्रारम्भ कर दें, तथा अपने सामर्थ्य अनुसार तन-मन-धन से सहयोग करें।

आज देश अनेक गम्भीर समस्याओं से ग्रस्त है। भयंकर भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अव्यवस्था, गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई, नशाखोरी तथा अन्धविश्वास एवं पाखण्ड जैसी समस्याएँ विकराल रूप धारण कर चुकी हैं। कन्या भ्रूण हत्या, गो-हत्या, दहेज, अश्लीलता आदि देश की ऐसी ज्वलन्त समस्याएँ हैं जिससे हमारी पूरी संस्कृति ही नष्ट हो रही है। वर्तमान समय में देश में पाखण्ड एवं अन्धविश्वास का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। आर्य समाज सदैव से बुराईयों के खिलाफ आगे बढ़कर लड़ाई लड़ता रहा है। इन विषम परिस्थितियों से आर्य समाज ही एक मात्र संगठन है जो मुक्ति दिला सकता है। अतः इस श्रावणी महापर्व पर प्रत्येक आर्य समाज राष्ट्रभृत यज्ञों का भव्य आयोजन करें। पूरी मानवता का प्रहरी होने के नाते आर्य समाज का दायित्व है कि इन सभी समस्याओं के निराकरण के लिए प्राथमिकता के आधार पर योजनाएँ बनाकर क्रियान्वयन किया जाये।

श्रावणी पर्व अर्थात् रक्षा बन्धन से लेकर श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तक सार्वजनिक स्थलों पार्कों अथवा बाजारों में अलग-अलग स्थानों पर राष्ट्रभृत यज्ञों का आयोजन करें। आर्य समाज के सदस्यों के अतिरिक्त क्षेत्र के प्रबुद्ध व्यक्तियों को विशेष रूप से आमन्त्रित करें तथा उन्हें यजमान भी बनायें। सामान्य जनों में अपने उद्देश्यों व सिद्धान्तों का अधिकाधिक प्रचार करें तथा उन्हें अपने साप्ताहिक सत्संगों में आमंत्रित करें। यज्ञोपरान्त जलपान तथा ऋषि लंगर अधिकाधिक लोगों में वितरित करें।

यज्ञ के अवसर पर आर्य विद्वानों तथा स्वाध्यायशील आर्य महानुभावों के उपदेश अवश्य आयोजित किये जायें जिससे जन सामान्य को वैदिक आध्यात्मिक तथा आर्य विचारों से सन्मार्ग के लिए प्रेरित किया जा सके।

अपने-अपने क्षेत्र के अलग-अलग वर्गों जैसे युवाओं, महिलाओं, वृद्धों, बच्चों आदि के लिए अलग-अलग विचार विमर्श या मार्ग दर्शन कार्यक्रम गोष्ठियां या लघु सम्मेलन आयोजित करें।

वेद कथा का आयोजन रात्रि में आर्य समाज मंदिरों अथवा सार्वजनिक स्थानों पर अवश्य किया जाये जिससे वेद की शिक्षाओं का लाभ धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, राष्ट्रीय तथा राजनैतिक उत्थान के लिए मिल सके।

क्षेत्रीय जनता जैसे उच्च पुलिस अधिकारी, सैन्य बलों के अधिकारी विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ जैसे डाक्टर वकील, इंजीनियर तथा विशेष रूप से युवा वर्ग को आर्य समाज तथा स्वामी दयानन्द के विचारों से परिचित कराने हेतु अल्प मूल्य का लघु साहित्य भेंट स्वरूप प्रदान करें। अनजान और अनभिज्ञ लोगों को वेद के ज्ञान के दायरे में लाना हमारा परम कर्तव्य होना चाहिए।

आर्य समाज के समस्त सदस्यों की एक विशेष बैठक आयोजित करके आत्मावलोकन अवश्य करें कि क्या हमारे आर्य समाज की गतिविधियां सन्तोष जनक हैं? क्या इससे और अधिक कुछ किया जा सकता है? इस पर विचार करें तथा कार्यरूप में परिणत करें।

वेद प्रचार सप्ताह के अन्तर्गत श्रावणी पर्व से लेकर श्री कृष्ण जन्माष्टमी तक प्रतिदिन प्रातः प्रभात फेरी (जन-जागरण) निकालने के विशेष प्रयास किये जाने चाहिए जिसमें बच्चे, युवा, वृद्ध, नर-नारी सभी वर्ग के लोग उपस्थित हों तथा भजनों, नारों और जगह-जगह पर संक्षिप्त रूप से आर्य समाज के मन्तव्यों तथा सिद्धान्तों का प्रचार किया जाये तो अति उत्तम होगा।

श्रावणी वाले दिन विशेष यज्ञ के अवसर पर यज्ञोपवीत धारण करना तथा परिवर्तित करना विशेष रूप से सम्पादित किया जाये तथा यज्ञोपवीत क्यों धारण करना चाहिए तथा उसकी महत्ता के विषय में आम जनता को परिचित कराना न भूलें।

इसी दिन हैदराबाद सत्याग्रह के धर्म युद्ध में अपने प्राणों की आहुति देने वाले उन शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित की जानी चाहिए जिन्होंने धर्म की बलिवेदी पर अपने प्राण न्योछावर कर दिये। रक्षा बन्धन पर्व के वैदिक स्वरूप का प्रचार तथा गुरुकुल जैसी संस्थाओं को सहायता देना तथा संस्थाओं की रक्षा का व्रत विशेष रूप से लिया जाना चाहिए।

वेद प्रचार सप्ताह के दिनों में प्रतिदिन स्वच्छता अभियान चलायें अपने पास पड़ोस के क्षेत्रों में स्वयं सफाई करें तथा अन्य व्यक्तियों को प्रेरित करें कि वे अपने पास-पड़ोस के क्षेत्र को सदैव स्वच्छ रखें।

इसी प्रकार वृक्षारोपण का कार्य भी किया जाये। प्रत्येक व्यक्ति कम से कम एक पौधा अवश्य रोपित करे और पर्यावरण के सम्बन्ध में लोगों में जागृति लाने का प्रयास करे।

हम आर्य समाजी इस अवसर पर कुछ अलग करके दिखायें जिससे आम जनों में आर्य समाज की एक अलग छवि निर्मित हो और लोग हमसे प्रभावित हों। यदि वेद प्रचार सप्ताह के दौरान कुछ नये व्यक्तियों को हम सब आर्य समाज से जोड़ पायें तो यह वेद प्रचार सप्ताह मनाना सफल माना जायेगा।

26 अगस्त, 2024 को श्री कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर विशेष यज्ञ की पूर्णाहुति तथा योगीराज श्री कृष्ण जी के वैदिक स्वरूप का दिग्दर्शन विस्तृत रूप से आम जनता को कराया जाये जिससे योगीराज श्री कृष्ण के सच्चे स्वरूप का ज्ञान लोगों को प्राप्त हो तथा उनके बारे में फैली हुई भ्रांतियां दूर हों।

आर्य समाज का मुख्य कार्य वेद प्रचार, मानव निर्माण, राष्ट्र निर्माण तथा सत्य धर्म का प्रचार करना है। वेद का पढ़ना और पढ़ाना, सुनना और सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है अतः वेद मय होकर दयानन्द के भक्तों आगे बढ़ो और वेद प्रचार करो।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में हमने वेद ज्ञान को जन-जन के हाथों में, प्रत्येक परिवार में, पुस्तकालयों में, विद्यालयों तथा कालेजों की लाइब्रेरियों में पहुंचाने का संकल्प लेकर लगातार प्रकाशित कराकर सस्ते मूल्य पर निरन्तर उपलब्ध कराने का कार्य कर रहे हैं। इस वेद प्रचार सप्ताह के अवसर पर आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के पास वेद पहुंचाने का यत्न करें और अपने मित्रों, सम्बन्धियों को भी प्रेरित करें कि वे इस योजना का लाभ उठायें।

प्रो० विट्ठलराव आ५, सभा मंत्री, प्रकाशक व मुद्रक द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, 3/5 महर्षि दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान/आसफ अली रोड), नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित तथा ज्योति प्रिंटिंग प्रेस, ई-94, सैक्टर-6, नोएडा-201301 से प्रकाशित एवं मुद्रित। (दूरभाष : 011-23274771, 42415359)
सम्पादक : प्रो० विट्ठलराव आर्य (सभा मन्त्री) मो.:0-9849560691, 0-9013251500 ई-मेल : sarvadeshik@yahoo.co.in, sarvadeshikarya@gmail.com वैबसाइट : www.vedicaryasamaj.com
वैदिक सार्वदेशिक साप्ताहिक में छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक या सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सैद्धान्तिक मतैक्यता होना अनिवार्य नहीं है।